प्रवचन नं. १२६ गाथा-४९, श्लोक ३५-३६, तथा गाथा ५० से ५५
दिनाङ्क २८-१०-१९७८, शुक्रवार कार्तिक शुक्ल ३, वीर निर्वाण संवत् २५०४

श्री समयसार-

— **ऐसा चैतन्यरूप परमार्थस्वरूप जीव है।** पर से भिन्न कहा न? आहाहा! सर्वस्व रागादिभाव से सर्वस्व पूर्ण अभाव है। उनसे पूर्ण अभाव है। आहाहा! ऐसा **चैतन्यरूप**-चैतन्यरूप **परमार्थस्वरूप** परमपदार्थस्वरूप जीव है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द प्रभु चैतन्यरूप परमार्थस्वरूप ऐसा जीव है। **जिसका प्रकाश निर्मल है...** जाननस्वभाव जिसका निर्मल है। त्रिकाल तो निर्मल है, परन्तु पर्याय में भी निर्मल है। आहाहा! **ऐसा यह भगवान इस लोक में...** ऐसा यह भगवान... यह भगवान, यह आत्मा, हों! आहाहा! **इस लोक में एक,...** एकरूप है, जिसमें पर्याय का भेद भी जिसमें नहीं है। ऐसा **एक, टंकोत्कीर्ण,...** ऐसा का ऐसा। **भिन्न ज्योतिरूप विराजमान है।** रागादि से दया, दान के विकल्प आदि से भी **भिन्न ज्योतिरूप विराजमान है।** उसकी दृष्टि करो तो सम्यग्दर्शन हो और आनन्द का वेदन आवे। आहाहा! ऐसा यह आत्मा है।

कलश-३५

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहकर ऐसे आत्मा के अनुभव की प्रेरणा करते हैं :—

सकलमपि विहायाह्राय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम्।
इममुपरि चरंतं चारुं विश्वस्य साक्षात्
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनंतम्॥३५॥

श्लोकार्थ - [चित्-शक्ति-रिक्तं] चित्शक्ति से रहित [सकलम् अपि] समस्त भावों को [अह्राय] मूल से [विहाय] छोड़कर [च] और [स्फुटतरम्] प्रगटरूप

से [स्वं चित्-शक्तिमात्रम्] अपने चित्शक्तिमात्र भाव का [अवगाह्य] अवगाहन करके, [विश्वस्य उपरि] समस्त पदार्थसमूहरूप लोक के ऊपर [चारु चरन्तं] सुन्दर रीति से प्रवर्तमान ऐसे [इमम्] यह [परम्] एकमात्र [अनन्तम्] अविनाशी [आत्मानम्] आत्मा का [आत्मा] भव्यात्मा [आत्मनि] आत्मा में ही [साक्षात् कलयतु] अभ्यास करो, साक्षात् अनुभव करो।

भावार्थ - यह आत्मा परमार्थ से समस्त अन्य भावों से रहित चैतन्यशक्तिमात्र है; उसके अनुभव का अभ्यास करो, ऐसा उपदेश है॥३५॥

कलश - ३५ पर प्रवचन

श्लोक, **अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहकर ऐसे आत्मा के अनुभव की प्रेरणा करते हैं :—**

सकलमपि विहायाह्राय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम्।
इममुपरि चरंतं चारुं विश्वस्य साक्षात्
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनंतम्॥३५॥

'चित्-शक्ति-रिक्तं' चित्शक्ति से रहित समस्त भावों को मूल से छोड़कर.... क्या कहा ? **चित्शक्ति से रहित...** भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानशक्ति है, ज्ञानस्वभाव है, इससे रहित पुण्य और पाप आदि के भाव, आहाहा! वह रिक्त है, रहित है। चैतन्यस्वभाव शक्तिरूप चैतन्य, वह इनसे जो रहित वस्तु है, इनसे रहित है। इनसे रहित है-इनसे भी रहित है। आहाहा! वे पुण्य और पाप के भाव—चाहे तो गुण-गुणी के भेद का विकल्प हो, आहाहा! वह चित्शक्ति से रहित है। आहाहा! जिसमें चैतन्य का सामर्थ्य, राग-व्यवहार के रागादि में नहीं है, आहाहा! ऐसे भाव को मूल से छोड़कर आहाहा! **'सकलम् अपि' मूल से छोड़कर...** सकल भाव - चाहे तो सूक्ष्म पंच महाव्रत के विकल्प का राग है, अरे! द्रव्य-गुण और पर्याय के भेद का विकल्प हो, वह **'सकलम् अपि'** उन सबको मूल से छोड़कर, आहाहा! **और प्रगटरूप से 'स्फुटतरम्' प्रगटरूप से 'स्वं चित्-शक्तिमात्रम्'**

अपने चित्शक्तिमात्र भाव का... आहाहा! '**अवगाह्य**' **अवगाहन करके,...** अन्तर में प्रवेश कर - ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**सकलम् अपि**' विकल्प आदि के भावों को छोड़कर, मूल में से छोड़कर चित्शक्तिस्वभाव का अवगाहन कर। अनादि से जो राग में अवगाहन / प्रवेश है, उसे (छोड़कर) यहाँ प्रवेश कर। आहाहा! ऐसी वस्तु है।

भगवान चित्शक्तिमात्र वस्तु है। है न '**चित्-शक्तिमात्रम्**' वह (पहले) '**चित्-शक्ति-रिक्तं**' राग, दया, दान, पुण्य-पाप चित्शक्ति-रहितं और स्वयं चित्शक्तिमात्रम्। आहाहा! उसका अवगाहन कर। आहाहा! जैसे गहरे समुद्र में प्रवेश करते हैं, वैसे भगवान चित्शक्तिमात्र प्रभु के तल में गहरा जा, अवगाहन कर। आहाहा! ऐसी बात है।

'**अवगाह्य**' भव्य आत्मा, है न? है तो आत्मा शब्द परन्तु अर्थकार ने (कहा) योग्य आत्मा '**विश्वस्य उपरि**' **समस्त पदार्थसमूहरूप लोक के ऊपर...** रागादि समस्त पदार्थों के समूह पर से, लोक के ऊपर अर्थात् उत्कृष्ट वस्तु। आहाहा! रागादि से रहित अर्थात् भिन्न सर्वोत्कृष्ट वस्तु। **लोक के ऊपर सुन्दर रीति से,** '**चारु**'.... अर्थात् मनोहर, आनन्दस्वरूप प्रभु। आहाहा! '**चरन्तं**' आनन्द में प्रवर्तमान ऐसा भगवान आत्मा! आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दरूपी चारु अर्थात् मनोहर, ऐसे प्रवर्तमान ऐसा यह, आहाहा! एक श्लोक में तो... एक केवल अविनाशी, एक केवल अविनाशी, अकेला आत्मा नित्यानन्द प्रभु... आहाहा! एक केवल अकेला ज्ञानस्वभावमात्र अविनाशी—ऐसे आत्मा का, आत्मा का आत्मा में ही। आहाहा! ऐसा चैतन्यस्वरूप प्रभु सर्वोत्कृष्ट पर से भिन्न परिपूर्ण प्रभु में अवगाहन करके... आहाहा! आत्मा का आत्मा में ही - आत्मा का आत्मा में ही, आनन्दस्वरूप भगवान आनन्दस्वरूप में ही। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

जीव-अजीव अधिकार है न? इन रागादि सबको अजीव कहा है। भगवान एक ज्ञायकस्वरूप, पूर्णस्वरूप विश्व के ऊपर अर्थात् उत्कृष्ट तैरता, राग से भिन्न, अधिक उत्कृष्ट प्रभु... आहाहा! उसे एक केवल को-आत्मा में ही '**साक्षात् कलयतु**' प्रत्यक्ष अनुभव करो, आहाहा! उसे प्रत्यक्ष ध्यान करो, उसे प्रत्यक्ष मानो, उसे प्रत्यक्ष जानो '**कलयतु**' का अर्थ यह है—ध्याओ, मानो, जानो, अनुभव करो, यह कलयतु का अर्थ है। आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप प्रभु त्रिकाल... यहाँ चितिशक्ति लेनी है।

ज्ञान, बाह्य प्रगट है न, इसलिए पूरा चित्शक्ति है, ऐसा यहाँ बताते हैं। आहाहा! ऐसा जो प्रभु, राग आदि से सर्वोत्कृष्ट रीति से भिन्न—ऐसे आत्मा को, आत्मा में ही ध्याओ, अनुभवो, जानो, मानो। आहाहा! लो! यह सिद्धान्त का सार है। आहाहा!

'**कलयतु**' आहाहा! **अभ्यास करो,...** अर्थात् अनुभव करो। ऐसा है न। अर्थ भी यह है, देखो न, अभ्यास करो अर्थात् साक्षात् अनुभव करो, ऐसा अभ्यास का यह अर्थ है। आहाहा! भगवान पूर्ण परमात्मस्वरूप ही है, चित्शक्तिस्वभाव है, उससे (राग से) रहित स्वभाव है। आहाहा! ऐसे स्वभावमात्र प्रभु को आत्मा को ऐसे आत्मा, आत्मा को अन्तर निर्मल पर्याय द्वारा अनुभव करो। आहाहा! कहो, इसका नाम जीव का ज्ञान और जीव का ध्यान और जीव को जाना-माना अनुभव किया कहने में आता है। आहाहा!

श्रोता : परम सत्य! धर्म की शुरुआत यहाँ से होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहीं से इस धर्म की शुरआत होती है। आहाहा! बाकी तो रात्रि को रामजीभाई ने कहा नहीं था सब? बात सब सच्ची। पाप को पाप, पाप, पाप... मनसुखभाई! पूरे दिन पाप। भाई! नहीं आये? आहाहा! अरे रे! ये स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब के लिये और अपने भी शरीर के भरण-पोषण के लिये पूरे दिन पाप और पाप करता है।

श्रोता : पेट किस प्रकार भरना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पेट कौन भरे? पेट भरने का भाव वह पाप। आहाहा! रात्रि को भाई ने बहुत कहा था। पाप का स्पष्टीकरण था। लोगों को ख्याल (नहीं है) बापू! पूरे दिन पाप। आहाहा! पुण्य तो न हो परन्तु पाप के लिये पूरा दिन (मेहनत करता है)। आहा! उसमें यहाँ तो कहते हैं कि वह तो छोड़, परन्तु कोई दया, दान, व्रत के श्रवण-मनन का राग हो, उसे भी छोड़। आहाहा! भाई! तेरा आत्मा तो इन सब पुण्य-पाप के विकल्प से रहित है। तू वह है; ये रागादि तू नहीं है। आहाहा! भगवान की भक्ति और यात्रा, यह सब विकल्प और राग है, कहते हैं। भगवान आत्मा तो इनसे रहित है। आहाहा! शास्त्र-श्रवण करना, शास्त्र कहना, यह सब विकल्प है, कहते हैं। आहाहा! ऐसा ही है। उससे रहित प्रभु है। उस चित्शक्ति से रहित ये (पुण्य-पाप) चीज है, रागादि जो दया आदि, जो सुनना (आदि राग) चित्शक्ति से रहित है और भगवान इनसे रहित है। समझ में आया? आहाहा!

जो शुभ और अशुभ विकल्प हैं, वे चित्शक्ति-चैतन्यस्वभाव से रहित हैं। उन्हें अजीव कहा है और भगवान आत्मा चित्शक्तिमात्र है। आहाहा! ऐसा चित्शक्तिमात्र आत्मा, उस आत्मा को ही... आहाहा! उसकी निर्मलपर्याय द्वारा उसे अनुभव कर। आहाहा! निर्मलपर्याय द्वारा उसका ध्यान कर, उसे मान, उसे जान, उसका अनुभव कर। आहाहा! **कलयतु** बात में गजब किया है। ऐसे अभ्यास का अर्थ यह है, अभ्यास अर्थात् यह ऐसा है, ऐसा है-ऐसा नहीं। आहाहा! जहाँ चित्शक्ति सम्पन्न प्रभु!... आहाहा! कहाँ बाहर से यह सब अन्दर इसमें नहीं और रागादि यह सब धन्धा और बाहर स्त्री-पुत्र में तेरी चित्शक्ति उनमें नहीं, वे सब तेरी चित्शक्ति से रहित है। आहाहा! और तू चित्शक्ति से सहित है। आहाहा! यह शरीर मिट्टी का पिण्ड गोरा और रूपवान, और काला और गेहूँवर्णी यह सब जड़-मिट्टी है। ये सब चित्शक्ति से रहित है। आहाहा!

श्रोता : हैं तो मेरे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : मेरे होंवे तो अलग नहीं हो सकते। इसके नहीं हैं, इसलिए अलग पड़ जाते हैं। आहाहा!

एकदम दो बातें ली हैं कि भगवान चैतन्यशक्ति स्वभावमात्र वस्तु और रागादि दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और काम-क्रोध आदि के भाव और उनके फलरूप से शरीर आदि अनुकूल-प्रतिकूल आदि चीजें,... अनुकूल-प्रतिकूल कोई है नहीं, वे तो ज्ञेय हैं परन्तु इसे ऐसा लगता है कि यह ठीक नहीं और यह ठीक है - इन सब चीजों से, प्रभु! तू तो रहित है न? ये सब चीज़ें तेरी चित्शक्ति से रहित हैं। आहाहा! राग और दया, दान, व्रत का विकल्प उत्पन्न हो, वह भी चित्शक्ति से रहित है। आहाहा! और तू उनसे रहित है। आहाहा! और तू रहित है, है कौन? 'ज्ञानशक्ति' ज्ञान की प्रधानता से वर्णन है। है तो अनन्त गुण, परन्तु जहाँ ज्ञान असाधारण स्वभाव है। आहाहा! जो कि स्व-पर को प्रकाशित करता है, दूसरे सब गुण अपनी अस्ति रखते हैं परन्तु वे स्वयं अपने को नहीं जानते। आहाहा! यह एक चित्शक्तिगुण स्वयं अपने को जानता है और स्वयं पर को जाने—ऐसा असाधारण जो स्वभावभाव, वैसे चित्शक्तिमात्र प्रभु तू है। आहाहा! 'मात्र' कहा है न? '**चित्-शक्तिमात्र**'... है? आहाहा! और उसमें '**चित्-शक्ति-रिक्तं**' उसे ऐसा कहा कि '**सकलम् अपि**' **मूल**

से छोड़कर... आहाहा! तेरा चित्स्वभाव, ज्ञानस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, नित्यस्वभाव, सर्वस्व स्वभाव, सर्व-स्व-स्वभाव, चित्ज्ञानमात्र वस्तु प्रभु, ऐसा ज्ञानस्वभाव से शरीर, वाणी, मन, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देव-शास्त्र-गुरु और राग - पुण्य-पाप के भाव, ये सब चित्शक्ति से तो ये सब चीज़े रहित हैं। आहाहा! और इन सबसे रहित तू चित्शक्तिमात्र है। आहाहा!

ऐसी निवृत्ति कहाँ लेना? नूतन वर्ष हो, फिर ऐसे बहियाँ लिखे। आहाहा! अब नया वर्ष ऐसा अच्छा जाये, सुख-सुख से जाये बस ऐसा, पैसा पैदा हो, पाप में जिन्दगी जाये... अर..र! यहाँ ऐसा कि लाभ हो, उसका अर्थ क्या था? पाप का हो-लाभ सवाया-पाप का लाभ सवाया, सवाया - ऐसा कि इस भव में पैसा मिले, सुखी हो, सुखी हो, सुखी अर्थात् क्या परन्तु? भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु का अनुभव कर, वहाँ सुखी होने का पंथ है। आहाहा! ऐसे आत्मा का-अविनाशी आत्मा का एकरूप केवल आत्मा का, आत्मा में ही, एकरूपता की वीतरागदशा में उसका अभ्यास-अनुभव करो। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। लोगों ने कुछ का कुछ कर डाला, इसलिए लोगों को... आहाहा!

श्रोता : आपने तो सरल बनाया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु तो सीधी है। आहाहा!

भावार्थ - यह आत्मा... चेतनजी गये लगते हैं, हैं? ठीक। यह तो वह नरक का याद आया, उन आचार्य ने, भाई! स्वयं लिखा है, देवसेन आचार्य ने स्वयं लिखा है कि यह जो गाथायें हैं, वे पूर्व के आचार्यों की हैं, उनका मैंने संग्रह किया है। मेरा नहीं, पूर्व के आचार्यों का है, उनका संग्रह किया है। पूर्व के सूरि आचार्यों ने कहा, वह यह कहा जाता है अर्थात् है तो स्वयं ९०० के साल में। ९०० के साल में स्वयं, अमृतचन्द्राचार्य के पश्चात् (हुए हैं) और श्वेताम्बर पन्थ निकला, वह तो दो हजार वर्ष, हजार वर्ष इनके पहले, तथापि पूर्व के सूरिओं ने कहा है, आचार्यों ने (कहा) वह मैं यह कहता हूँ। उन गाथाओं का संग्रह मैंने किया है - ऐसा कहा है। आहाहा! परम्परा-अब अन्दर लिखा है स्वयं आचार्य ने (कि) पूर्व के सूरिओं ने कहा है, मैं कहता हूँ ऐसा नहीं। पूर्व के आचार्यों ने गाथा कही है, उन गाथाओं का संग्रह मैंने किया है - ऐसा अन्त में यह लिखा है। '**पूर्व आयरियं संग्रह**' पहले / पूर्व के सूरिओं ने कहा हुआ कहता हूँ - ऐसा था। आज सबेरे

देखा। आहाहा! धर्म के नाम से आकर भी अभिमान आ जाता है न? इसलिए इन्होंने ऐसे पन्थ बहुत निकले - ऐसा लिखा है। अन्दर से मारीचि से लेकर लिखा है, मारीचि नहीं? भरत का पुत्र। आहाहा! हम भी जाननेवाले हैं, हम इस धर्म को भलीभाँति परखनेवाले हैं —ऐसे अभिमान में आकर कई मार्ग निकाले हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं प्रभु! यह सब भूल जा अब। कुन्दकुन्दाचार्य आदि सन्तों ने जो कहा, वह भगवान का कहा हुआ कहा है। आहाहा! आहाहा! उन्होंने जो यह आत्मा कहा, वह ऐसा है। आहाहा!

श्रोता : दूसरे कहते हैं कि हमारे में आचार्य हुए हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे आचार्य हुए सब इससे उल्टे। कठिन काम है, क्या हो? दुःख होता है, दूसरों को लगता है। वस्तु की स्थिति तो है वह है। ये कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, दिगम्बर सन्त कोई भी हों, वे तो अन्दर भावलिंगी सन्त हैं, वे भगवान का कहा हुआ कहते हैं और स्वयं अनुभव करके कहते हैं। आहाहा! आहाहा!

भावार्थ - यह आत्मा परमार्थ से समस्त अन्य भावों से रहित चैतन्यशक्तिमात्र है;... आहाहा! **उसके अनुभव का अभ्यास करो,...** देखा? आहाहा! पढ़ो और पढ़ने का विचारो, यह सब एक ओर विकल्प है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसके अनुभव का अभ्यास करो, इसमें है न पाठ आया है न? साक्षात् **अन्य भावों से रहित चैतन्यशक्तिमात्र है; उसके अनुभव का अभ्यास करो, ऐसा उपदेश है।** आहाहा!

कलश-३६

अब चित्शक्ति से अन्य जो भाव हैं, वे सब पुद्गलद्रव्यसम्बन्धी हैं, ऐसी आगे की गाथाओं की सूचनारूप से श्लोक कहते हैं :—

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयम्।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी॥३६॥

श्लोकार्थ - [चित्-शक्ति-व्याप्त-सर्वस्व-सारः] चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका

सर्वस्व-सार है, ऐसा [अयम् जीवः] यह जीव [इयान्] इतना मात्र ही है; [अतः अतिरिक्ताः] इस चित्शक्ति से शून्य [अमी भावाः] जो ये भाव हैं [सर्वे अपि] वे सभी [पौद्गलिकाः] पुद्गलजन्य हैं — पुद्गल के ही हैं॥३६॥

कलश - ३६ पर प्रवचन

अब चित्शक्ति से अन्य जो भाव हैं,... अब पश्चात् कहनेवाले हैं न, **वे सब पुद्गलद्रव्यसम्बन्धी हैं,...** आहाहा! चाहे तो लिखने का, सुनने का, पढ़ने का विकल्प उठे। अरे रे! **वे सब पुद्गलद्रव्यसम्बन्धी हैं,...** भगवान आत्मा में वे नहीं। आहाहा! पुद्गलद्रव्यसम्बन्धी हैं। आहाहा! यह राग, दया-दान का विकल्प गुण-गुणी के भेद का विकल्प, कहते हैं कि वह पुद्गलद्रव्यसम्बन्धी है। भगवान चैतन्य के सम्बन्धवाला वह नहीं है। आहाहा! **ऐसी आगे की गाथाओं की सूचनारूप से... (श्लोक कहते हैं)** अब आगे गाथा आती है न, उसकी यह सूचनिका आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं।

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयम्।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी॥३६॥

आहाहा! **चैतन्यशक्ति से व्याप्त...** भगवान तो जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... का समुद्र (है)। जाननस्वभाव से व्याप्त अर्थात् सहित **जिसका सर्वस्व-सार है,...** सर्वस्व—सर्व-स्व पूर्ण स्व का सार यह है। आहाहा! चैतन्यशक्ति से व्याप्त प्रभु है, राग से नहीं, शरीर से नहीं, मन से नहीं... आहाहा! अब ऐसा लोगों को कठिन पड़ता है (इसलिए) बाहर में चल निकले हैं। **चैतन्यशक्ति से व्याप्त**-सहित, व्याप्त है न? ऐसे तो व्याप्य-व्यापक में आता नहीं? आत्मा व्यापक और राग व्याप्य है। आत्मा व्यापक और आनन्द की पर्याय व्याप्य है। विकाररूप से राग की पर्याय व्याप्य है, निर्विकाररूप से निर्विकारी पर्याय व्याप्य है, व्यापक द्रव्य है। यहाँ तो पूर्ण चैतन्यशक्ति व्याप्त है। आहाहा! चैतन्यशक्ति से जिसका व्यापकपना अर्थात् सर्वस्व होनापना है, जिसका सर्वस्व सार है। आहाहा! यह कोई पण्डिताई की चीज नहीं है। आहाहा! ओहोहो! तिर्यंच पशु भी... आहाहा! चैतन्य सर्वस्व-सार है, उसका पशु भी अनुभव करता है। आहाहा!

ऐसा जो भगवान **सर्वस्व** सब अपना चैतन्यस्वरूप वह उसका सार है, आहाहा! **ऐसा यह जीव इतना मात्र ही है 'इयान्'...** आहाहा! **इतना मात्र ही है 'अतः अतिरिक्ताः' इस चित्शक्ति से शून्य...** जाननस्वभाव के सामर्थ्य से शून्य। जाननस्वभाव का ध्रुव प्रवाह, उससे शून्य '**अमी भावाः**' '**अमी भावाः**' **जो ये भाव...** अस्तित्व सिद्ध किया, जो ये भाव हैं। आहाहा! ये भाव हैं ऐसा मानो हैं, रागादि विकल्प आदि शरीर, वाणी, सब हैं। ये भाव हैं वे **सभी पुद्गलजन्य हैं 'पौद्गलिकाः'...** कहा न? ये सब जड़ से उत्पन्न हुए। आहाहा! इसलिए फिर कोई ऐसा कहे कि जड़कर्म है, उसके कारण यह राग होता है, ऐसा यहाँ नहीं कहना है। यहाँ तो राग तो होता है इसमें, परन्तु निमित्त जड़ है, उसके लक्ष्य से होता है; इसलिए उसका है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश अब! आहाहा! **जो ये भाव हैं, वे सभी पुद्गलजन्य हैं—पुद्गल के ही हैं।** आहाहा! इसमें से फिर कोई ऐसा निकाले कि विकार तो कर्म से ही-पुद्गल से ही होता है, आत्मा से नहीं (तो) ऐसा यहाँ नहीं कहना है। उसके आश्रय से होता है, इसलिए उसका है, आत्मा का नहीं; निकल जाता है, इसलिए उसका (आत्मा का) नहीं, इस अपेक्षा से कहा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अनन्त-अनन्त चौरासी की पाट-अवतार पड़े हैं। आहाहा! उसमें से निकलने का यह एक रास्ता है। जिसका सर्वस्व-सार है। जैसे शीशम में सार नहीं होता? शीशम की लकड़ी में बीच का सार चिकना-चिकना... ऐसे यह भगवान (आत्मा) रागादि के बीच में भिन्न सर्वस्व चैतन्यसार वस्तु है। आहाहा! बहुत अन्दर कठिन होता है, बीच का कठिन चिकना, देखा है न? ऊपर के भाग की अपेक्षा वह बीच का भाग कठिन चिकना, पश्चात् उसे निकाल डाले, खाली करे, तलवार रखने को ऐसे अन्दर... गोल, बहुत चिकना होता है। क्या कहा यह? उस शीशम का सार कहलाता है; उसी प्रकार इस भगवान (आत्मा) का सार... रागादि विकल्पादि जो विकार से अन्दर भिन्न अन्दर सर्वस्व सार चैतन्य पिण्ड है। आहाहा! अरे! आठ वर्ष का बालक भी यह अनुभवे और केवलज्ञान प्राप्त करे, वह कोई चीज़, किसी दूसरे की नहीं कि न पावे। आहा! है उसे प्राप्त करना है। आहाहा!

क्या श्लोक! ओहोहो! सन्तों की वाणी-दिगम्बर सन्तों की वाणी, उसके समक्ष दूसरे भरे पानी - ऐसी चीज है। आहाहा! एक चैतन्य सर्वस्व प्रभु, जैसे उस शीशम का सार होता है-वैसे यह भगवान अन्दर इन सब राग और पुण्य और शरीर आदि से भिन्न चैतन्य सर्वस्व सार है। चैतन्य का कन्द, रसकन्द प्रभु है। आहाहा! इससे भिन्न हैं, वे सब पुद्गल हैं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा का भाव भी यहाँ तो पुद्गल है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! पुद्गलजन्य है **पौद्गलिकाः** का अर्थ किया (कि) पुद्गलजन्य है; उसका ही अर्थ किया पुद्गल के ही हैं। उसका ही अर्थ किया पुद्गल के ही हैं। आहाहा! ऐसे भावों का व्याख्यान छह गाथाओं से करते हैं।

गाथा ५०-५५

जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो।
ण वि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं।।५०।।

जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि।।५१।।

जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभागठाणाणि।।५२।।

जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई।।५३।।

णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा।।५४।।

णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाया य अत्थि जीवस्स।
जेण दु एदे सव्वे पोग्गलदव्वस्स परिणामा।।५५।।

जीवस्य नास्ति वर्णो नापि गंधो नापि रसो नापि च स्पर्शः।
नापि रूपं न शरीरं नापि संस्थानं न संहननम्।।

जीवस्य नास्ति रागो नापि द्वेषो नैव विद्यते मोहः।
नो प्रत्यया न कर्म नोकर्म चापि तस्य नास्ति।।

जीवस्य नास्ति वर्गो न वर्गणा नैव स्पर्धकानि कानिचत्।
नो अध्यात्मस्थानानि नैव चानुभागस्थानानि।।

जीवस्य न संति कानिचिद्योगस्थानानि न बंधस्थानानि वा।
नैव चोदयस्थानानि न मार्गणास्थानानि कानिचित्।।
नो स्थितिबंधस्थानानि जीवस्य न संक्लेशस्थानानि वा।
नैव विशुद्धिस्थानानि नो संयमलब्धिस्थानानि वा।।
नैव च जीवस्थानानि न गुणस्थानानि वा संति जीवस्य।
येन त्वेते सर्वे पुद्गलद्रव्यस्य परिणामाः।।

यः कृष्णो हरितः पीतो रक्तः श्वेतो वा वर्णः स सर्वोऽपि नास्ति जीवस्य पुद्गल –द्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यः सुरभिर्दुरभिर्वा गंधः स सर्वोऽपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यः कटुकः कषायः तिक्तोऽम्लो मधुरो वा रसः य सर्वोऽपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यः स्निग्धो रूक्षः शीतः उष्णो गुरुर्लघुर्मृदुः कठिनो वा स्पर्शः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यत्स्पर्शादिसामान्यपरिणाममात्रं रूपं तन्नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यदौदारिकं वैक्रियिकमाहारकं तैजसं कार्मणं वा शरीरं तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूते –र्भिन्नत्वात्। यत्समचतुरस्रं न्यग्रोधपरिमंडलं स्वाति कुब्जं वामनं हुंडं वा संस्थानं तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यद्वज्रर्षभनाराचं वज्रनाराचं नाराचमर्धनाराचं कीलिका असंप्राप्तासृपाटिका वा संहननं तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यः प्रीतिरूपो रागः स सर्वोऽपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। योऽप्रीतिरूपो द्वेषः स सर्वोपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यस्तत्त्वाप्रतिपत्तिरूपो मोहः स सर्वोऽपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। ये मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगलक्षणाः प्रत्ययास्ते सर्वेऽपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाम –मयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यद् ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांत –रायरूपं कर्म तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यत्षट्पर्याप्तित्रिशरीरयोग्यवस्तुरूपं नोकर्म तत्सर्वमपि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाम –मयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यः शक्तिसमूहलक्षणो वर्गः स सर्वोऽपि नास्ति जीवस्य

पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। या वर्गसमूहलक्षणा वर्गणा सा सर्वापि नास्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यानि मंदतीव्ररसकर्मदल -विशिष्टन्यासलक्षणानि स्पर्धकानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाम -मयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यानि प्रतिविशिष्टप्रकृतिरसपरिणामलक्षणान्यनुभागस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यानि कायवाङ्मनोवर्गणापरिस्पंदलक्षणानि योगस्थानानि तानि सर्वाण्यापि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यानि प्रतिविशिष्टप्रकृतिपरिणामलक्षणानि बन्धस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूते- र्भिन्नत्वात्। यानि स्वफलसंपादनसमर्थकर्मावस्थालक्षणान्युदयस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यानि गतीन्द्रियकाययोगवेद -कषायज्ञानसंयमदर्शनलेश्याभव्यसम्यक्त्वसंज्ञाहारलक्षणानि मार्गणास्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यानि प्रतिविशिष्टप्रकृतिकालांतरसहत्वलक्षणानि स्थितिबंधस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यानि कषायविपाकोद्रेकलक्षणानि संक्लेशस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्न -त्वात्। यानि कषायविपाकानुद्रेकलक्षणानि विशुद्धिस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सत्यनुभूतेभिन्नत्वात्। यानि चारित्रमोहविपाकक्रमनिवृत्ति -लक्षणानि संयमलब्धिस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न सन्ति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाम -मयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यानि पर्याप्तापर्याप्तबादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वींद्रियचतुरिंद्रियसंज्ञयसंज्ञि -पंचेद्रियलक्षणानि जीवस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाम -मयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्। यानि मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयत -सम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्तसंयताप्रमत्तसंयतापूर्वकरणोपशमकक्षपकानिवृत्तिबादरसांपरा -योपशमकक्षपकसूक्ष्मसांपरायोपशमकक्षपकोपशांतकषायक्षीणकषायसयोगकेवल्ययोग- केवलिलक्षणानि गुणस्थानानि तानि सर्वाण्यपि न संति जीवस्य पुद्गलद्रव्यपरिणाम- मयत्वे सत्यनुभूतेर्भिन्नत्वात्।

ऐसे इन भावों का व्याख्यान छह गाथाओं में कहते हैं :—

नहिं वर्ण जीव के, गंध नहिं, नहिं स्पर्श, रस जीव के नहीं।
नहिं रूप अर संहनन नहिं, संस्थान नहिं, तन भी नहीं॥५०॥

नहिं राग जीव के, द्वेष नहिं, अरु मोह जीव के है नहीं।
प्रत्यय नहीं, नहिं कर्म अरु नोकर्म भी जीव के नहीं॥५१॥

नहीं वर्ग जीव के, वर्गणा नहिं, कर्मस्पर्द्धक है नहीं।
अध्यात्मस्थान न जीव के, अनुभागस्थान भी हैं नहीं॥५२॥

जीव के नहीं कुछ योगस्थान रु, बंधस्थान भी है नहीं।
नहिं उदयस्थान न जीव के, अरु स्थान मार्गणा के नहीं॥५३॥

स्थितिबंधस्थान न जीव के, संक्लेशस्थान भी हैं नहीं।
जीव के विशुद्धिस्थान, संयमलब्धिस्थान भी हैं नहीं॥५४॥

नहिं जीवस्थान भी जीव के, गुणस्थान भी जीव के नहीं।
ये सब ही पुद्गल द्रव्य के, परिणाम हैं जानो यही॥५५॥

गाथार्थ - [जीवस्य] जीव के [वर्णः] वर्ण [नास्ति] नहीं, [न अपि गंधः] गन्ध भी नहीं, [रसः अपि न] रस भी नहीं [च] और [स्पर्शः अपि न] स्पर्श भी नहीं, [रूपं अपि न] रूप भी नहीं, [न शरीरं] शरीर भी नहीं, [संस्थानं अपि न] संस्थान भी नहीं, [संहननम् न] संहनन भी नहीं; [जीवस्य] जीव के [रागः नास्ति] राग भी नहीं, [द्वेषः अपि न] द्वेष भी नहीं, [मोहः] मोह भी [न एव विद्यते] विद्यमान नहीं, [प्रत्ययाः नो] प्रत्यय (आस्रव) भी नहीं, [कर्म न] कभी भी नहीं [च] और [नोकर्म अपि] नोकर्म भी [तस्य नास्ति] उसके नहीं है; [जीवस्य] जीव के [वर्गः नास्ति] वर्ग नहीं, [वर्गणा न] वर्गणा नहीं, [कानिचित् स्पर्धकानि न एव] कोई स्पर्धक भी नहीं, [अध्यात्मस्थानानि नो] अध्यात्मस्थान भी नहीं [च] और [अनुभागस्थानानि] अनुभागस्थान भी [न एव] नहीं है; [जीवस्य] जीव के [कानिचित् योगस्थानानि] कोई योगस्थान भी [न संति] नहीं [वा] अथवा [बंधस्थानानि न] बंधस्थान भी नहीं, [च] और [उदयस्थानानि] उदयस्थान भी [न एव] नहीं, [कानिचित् मार्गणास्थानानि न] कोई मार्गणास्थान भी नहीं हैं; [जीवस्य] जीव के [स्थितिबंधस्थानानि नो] स्थितिबंधस्थान भी नहीं [वा] अथवा

[संक्लेशस्थानानि न] संक्लेशस्थान भी नहीं, [विशुद्धिस्थानानि] विशुद्धिस्थान भी [न एव] नहीं [वा] अथवा [संयमलब्धिस्थानानि] संयमलब्धिस्थान भी [नो] नहीं हैं; [च] और [जीवस्य] जीव के [जीवस्थानानि] जीवस्थान भी [न एव] नहीं [वा] अथवा [गुणस्थानानि] गुणस्थान भी [न संति] नहीं हैं; [येन तु] क्योंकि [एते सर्वे] यह सब [पुद्गलद्रव्यस्य] पुद्गलद्रव्य के [परिणामाः] परिणाम हैं।

टीका - जो काला, हरा, पीला, लाल और सफेद वर्ण है वह सर्व ही जीव का नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य का परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥१॥ जो सुगन्ध और दुर्गन्ध है वह सर्व ही जीव की नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य का परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥२॥ जो कडुवा, कषायला, चरपरा, खट्टा और मीठा रस है, वह सर्व ही जीव का नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥३॥ जो चिकना, रूखा, ठण्डा, गर्म, भारी, हल्का, कोमल अथवा कठोर स्पर्श है, वह सर्व ही जीव का नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥४॥ जो स्पर्शादि सामान्य-परिणाममात्र रूप है, वह जीव का नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥५॥ जो औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस अथवा कार्मण शरीर है, वह सर्व ही जीव का नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥६॥ जो समचतुरस्त्र, न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, कुब्जक, वामन अथवा हुंडक संस्थान है, वह सर्व ही जीव का नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥७॥ जो वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलिका अथवा असंप्राप्तासृपाटिका संहनन है वह सर्व ही जीव का नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥८॥ जो प्रीतिरूप राग है, वह सर्व ही जीव का नहीं है क्योंकि वह पुद्गलपरिणाममय है इसलिए (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥९॥ जो अप्रीतिरूप द्वेष है वह सर्व ही जीव का नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥१०॥ जो यथार्थ तत्त्व की अप्रतिपत्तिरूप (अप्राप्तिरूप) मोह है वह सर्व ही जीव का नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥११॥ मिथ्यात्व,

अविरति, कषाय और योग जिसके लक्षण हैं ऐसे जो प्रत्यय (आस्त्रव) वे सर्व ही जीव के नहीं हैं, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न हैं ॥१२॥ जो ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायरूप कर्म है, वह सर्व ही जीव का नहीं है क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥१३॥ जो छह पर्याप्तियोग्य और तीन शरीरयोग्य वस्तु (पुद्गलस्कन्ध) रूप नोकर्म है, वह सर्व ही जीव का नहीं है, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥१४॥ जो कर्म के रस की शक्तियों का (अर्थात् अविभागप्रतिच्छेदों का) समूहरूप वर्ग है, वह सर्व ही जीव का नहीं है, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥१५॥ जो वर्गों का समूहरूप वर्गणा है वह सर्व ही जीव का नहीं है, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥१६॥ जो मन्दतीव्ररसवाले कर्मसमूह के विशिष्ट न्यास (जमाव) रूप (वर्गणा के समूहरूप) स्पर्धक हैं वह सर्व ही जीव के नहीं हैं, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न हैं ॥१७॥ स्वपर के एकत्व का अध्यास (निश्चय) हो तब (वर्तने पर), विशुद्ध चैतन्यपरिणाम से भिन्नरूप जिनका लक्षण है, ऐसे जो अध्यात्मस्थान हैं वे सर्व ही जीव के नहीं हैं, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥१८॥ भिन्न-भिन्न प्रकृतियों के रस के परिणाम जिनका लक्षण है ऐसे जो अनुभागस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥१९॥ काय, वचन और मनोवर्गणा का कम्पन जिनका लक्षण है ऐसे जो योगस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥२०॥ भिन्न-भिन्न प्रकृतियों के परिणाम जिनका लक्षण है ऐसे जो बन्धस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥२१॥ अपने फल के उत्पन्न करने में समर्थ कर्म-अवस्था जिनका लक्षण है ऐसे जो उदयस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है ॥२२॥ गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञा और आहार जिनका लक्षण है ऐसे जो मार्गणास्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के

परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है॥२३॥ भिन्न-भिन्न प्रकृतियों का अमुक मर्यादा तक कालान्तर में साथ रहना जिनका लक्षण है ऐसे जो स्थितिबन्धस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है॥२४॥ कषायों के विपाक की अतिशयता जिनका लक्षण है ऐसे जो संक्लेशस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है॥२५॥ कषायों के विपाक की मन्दता जिनका लक्षण है ऐसे जो विशुद्धिस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है॥२६॥ चारित्रमोह के विपाक की क्रमशः निवृत्ति जिनका लक्षण है ऐसे जो संयमलब्धिस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है॥२७॥ पर्याप्त एवं अपर्याप्त ऐसे बादरसूक्ष्म एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, संज्ञी-असंज्ञी पंचेन्द्रिय जिनका लक्षण है, ऐसे जो जीवस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने (अपनी) अनुभूति से भिन्न है॥२८॥ मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण-उपशमक तथा क्षपक, अनिवृत्तिबादर-साम्पराय-उपशमक तथा क्षपक; सूक्ष्मसाम्पराय-उपशमक तथा क्षपक, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, सयोगकेवली और अयोगकेवली जिनका लक्षण है ऐसे जो गुणस्थान वे सर्व ही जीव के नहीं हैं क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है॥२९॥ (इस प्रकार ये समस्त ही पुद्गलद्रव्य के परिणाममय भाव हैं; वे सब जीव नहीं हैं। जीव तो परमार्थ से चैतन्यशक्तिमात्र है।)

गाथा - ५० से ५५ पर प्रवचन

जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो।
ण वि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं॥५०॥

जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि॥५१॥

जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभागठाणाणि।।५२।।

जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई।।५३।।

णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा।।५४।।

णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाया य अत्थि जीवस्स।
जेण दु एदे सव्वे पोग्गलदव्वस्स परिणामा।।५५।।

ये तो पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा! हरिगीत

नहिं वर्ण जीव के, गंध नहिं, नहिं स्पर्श, रस जीव के नहीं।
नहिं रूप अर संहनन नहिं, संस्थान नहिं, तन भी नहीं॥५०॥

नहिं राग जीव के, द्वेष नहिं, अरु मोह जीव के है नहीं।
प्रत्यय नहीं, नहिं कर्म अरु नोकर्म भी जीव के नहीं॥५१॥

नहीं वर्ग जीव के, वर्गणा नहिं, कर्मस्पर्द्धक है नहीं।
अध्यात्मस्थान न जीव के, अनुभागस्थान भी हैं नहीं॥५२॥

जीव के नहीं कुछ योगस्थान रु, बंधस्थान भी है नहीं।
नहिं उदयस्थान न जीव के, अरु स्थान मार्गणा के नहीं॥५३॥

स्थितिबंधस्थान न जीव के, संक्लेशस्थान भी हैं नहीं।
जीव के विशुद्धिस्थान, संयमलब्धिस्थान भी हैं नहीं॥५४॥

नहिं जीवस्थान भी जीव के, गुणस्थान भी जीव के नहीं।
ये सब ही पुद्गल द्रव्य के, परिणाम हैं जानो यही॥५५॥

ये छह गाथाएँ, हमारे नारायणभाई कहते, उकरडो (घूरा) २९ बोल का घूरा कहते थे।

टीका - जो काला, हरा, पीला, लाल और सफेद वर्ण है।... हैं तो ये वर्ण की

पर्यायें। वर्ण जो है, उनकी ये पर्यायें हैं। रंग जो गुण है उसकी ये पाँच पर्यायें हैं। **वह सर्व ही जीव का नहीं है...** आहाहा! सफेद वर्ण है वह पर्याय है, सुन्दर श्वेत शरीर है, वह वर्ण गुण नहीं। वह वर्ण गुण की सफेद पर्याय है, वह इस वर्ण गुण की सफेद (पर्याय है)। यह गेहूँ वर्णी शरीर है—ऐसा नहीं कहते, लाल होवे तो? सफेद होवे तो उसमें... काला होवे तो उसमें कहते हैं उसकी माँ (माता) काली, इसलिए उसके वर्ण हुआ। इसका पिता गोरा, इसलिए उसके वर्ण हुआ, ऐसा लोग कहते हैं। वह सब वर्ण गुण की पर्याय है। आहाहा!

वह सर्व ही जीव का नहीं है... आहाहा! **क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य का परिणाममय होने से...** भाषा देखो! पुद्गलद्रव्य के परिणाम होने से, ऐसा नहीं। अमृतचन्द्राचार्य! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा कि **पोग्गलदव्वस्स परिणामा** उसका हेतु अन्दर से निकाला। आहाहा! वे तो पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से। भगवान चैतन्यस्वरूप से तो ये भिन्न हैं, ये पुद्गलमय है, पुद्गलमय अभेद है पुद्गल से। आहाहा! यह भेदज्ञान कराया है। आहाहा!

इसके बदले में रूपवान हूँ, मैं काला हूँ, मैं गेहूँ वर्णी हूँ... आहाहा! वे तो पुद्गल के परिणाम हैं, उन्हें तू तेरा मानता है। क्या कहते हैं यह तुझे? मैं मेरी माँ (माता) के वर्ण आया हूँ, बड़ा भाई पिता के वर्ण आया है, ऐसा लोग कहते हैं। इसकी माँ गेहूँ वर्ण हो न, उस वर्ण यह हुआ हो। इसका पिता गोरा हो तो उसके वर्ण यह हुआ हो, कहते हैं हमारे... किसका वर्ण बापू! आहाहा! वह सब पर्याय वर्णगुण की दशाएँ हैं, वे तेरी नहीं, तुझमें नहीं; उनमें तू नहीं। आहाहा!

(अपनी) अनुभूति से भिन्न है। भाषा देखो! द्रव्य से भिन्न, यह अनुभव किया, तब उससे भिन्न है ऐसा। ऐसे भिन्न-भिन्न है - ऐसा नहीं। आहाहा! यह काली, लाल, पीली, सफेद पर्याय, वह पुद्गलमय है, उससे आत्मा भिन्न है और अनुभूति से भिन्न है। वर्तमान में उसका अनुभव करने पर उससे वे भिन्न हैं। आहाहा! द्रव्य से तो भिन्न हैं, परन्तु अनुभव करने पर उससे भी वह चीज (वर्णादि) भिन्न हैं। अभी आगे तो अधिक आयेगा। आहाहा!

अनुभूति, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, ऐसी अनुभूति की दशा से... यहाँ वे दशाएँ कही हैं न? वर्ण की दशा / पर्याय कही है। क्या कहा? वर्ण की पर्यायें कही हैं। काला, सफेद आदि, तो वह पर्याय, द्रव्य की अनुभूति की पर्याय से वह भिन्न है।

आहाहा! समझ में आया? वर्णगुण है, उसकी यह काली, पीली, लाल, हरी, सफेद यह पर्याय है। तब वे पर्यायें-वर्ण की पर्यायें हैं। तब उन्हें भिन्न है, ऐसा कब हो? कि भगवान आत्मा अपने अनुभूति की पर्याय में जब आवे। आहाहा! वे वर्ण के गुण की पाँच पर्यायें हैं, उनसे भगवान भिन्न है। क्यों? कि वे अनुभूति से भिन्न है। आहाहा! इस पर्याय से - वर्ण की पर्याय से... भगवान आत्मा की अनुभूति है, वह पर्याय। आहाहा! उससे यह पर्याय (वर्ण की) भिन्न है। यह भिन्न है, ऐसा अनुभव हुआ तब भिन्न है, ऐसा कहने में आया - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इस तरह वर्ण की पर्याय मेरी नहीं है - ऐसा धारणा करके रखे, वह वस्तु नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की अनुभूति की दशा और (वर्ण की) पर्याय, दो भिन्न है। द्रव्य से भिन्न है परन्तु द्रव्य से भिन्न, यह अनुभव किये बिना भिन्न है - ऐसा कहाँ से आया, कहते हैं। समझ में आया? यह वर्ण गुण की पाँच पर्यायें, वे गुण की पर्यायें हैं परन्तु वे आत्मा से भिन्न हैं, यह कब ज्ञात हो? कि आत्मा अनुभूति करे, तब अनुभूति की पर्याय से वह पर्याय भिन्न है। जैसे वर्णगुण की पाँच पर्यायें, वैसे भगवान आत्मा की अनुभूति की पर्याय... आहाहा! आहाहा! उससे-इस प्रभु की अनुभूति की पर्याय से वह वर्ण की पर्याय, वर्णगुण की पर्याय द्रव्य की अनुभूति की पर्याय से वह वर्ण की पर्याय भिन्न है। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसी बात है। शरीर का होना हो, वह हो; वह तो हुआ ही करेगा कहते हैं। आहाहा! तू तेरा कर, तू तेरा सम्हाल। आहाहा! ओहो! क्या टीका! आहाहा! एक ओर वर्णगुण, उसकी पाँच पर्याय; एक ओर भगवान आत्मा, उसकी अनुभूति की पर्याय, तब वे भिन्न हैं - ऐसा हुआ। आहाहा! समझ में आया? है न? यह तो सन्तों की वाणी बापू! यह कोई... आहाहा! क्या कहा यह, समझ में आया?

जैसे यह वर्णगुण सामान्य है, उसकी यह काली, हरी, पीली, लाल, ये विशेष पर्यायें हैं परन्तु ये भिन्न हैं, यह कब ख्याल में आवे? कि आत्मा जो सामान्य द्रव्य है, उसकी विशेष अनुभूति करे, तब वे भिन्न हैं, वैसा अनुभव सच्चा हो। आहाहा! क्या यह समयसार! क्या इसकी गाथायें!! आहाहा! वर्णगुण की पाँच पर्यायें भिन्न हैं, भिन्न हैं—ऐसे भिन्न पड़े बिना भिन्न है, ऐसा तुझे कहाँ से ख्याल आया, कहते हैं। आहाहा! आहाहा!

भगवान आत्मा द्रव्य अर्थात् वस्तु से तो सामान्य-त्रिकाल है, जब उसका अनुभव हुआ, उसे अनुसरणकर द्रव्य की पर्याय जो शुद्ध अनुभूति हुई, उस अनुभूति की पर्याय से वे वर्ण की पाँच पर्यायें भिन्न हैं। आहाहा! वे सभी पुद्गल की पर्यायें हैं। तब अनुभूति, वह भगवान आत्मा की शुद्धपर्याय है। आहाहा!

अब ऐसा उपदेश! अब सुनना कठिन पड़ता है। पूरे दिन धन्धा... धन्धा... धन्धा...। नहीं कहा उसने, कि यह जैनधर्म बनियों को मिला और बनिये व्यापार में घुस गये। ए... चिमनभाई! वह जापान का ऐतिहासिक है, बड़ा ऐतिहासिक। लड़का भी ऐसा लिखता है। दोनों ऐसे, (उन्होंने लिखा) जैन 'अनुभूति' कहा न, यह जैनधर्म अनुभूतिस्वरूप है - ऐसा उसने कहा। समाचार पत्र में बड़ा लेख आया था। परन्तु यह जैन (धर्म) बनियों को मिला और बनिये पूरे दिन व्यापार में घुस गये। यह और यह। आहाहा! यह व्यापार करने को निवृत्त नहीं। यह व्यापार अर्थात् अनुभूति; आत्मा का व्यापार यह है। आहाहा! आहाहा! एक बोल हुआ।

(दूसरा बोल) अब सुरभि अथवा दुरभि-गन्ध। गन्ध है, वह सामान्य है और सुरभि-दुरभि, यह उसकी विशेष पर्यायें हैं। जो गन्ध है, वह गुण है, वह पुद्गल का गुण है और उस गुण की सुरभि और दुरभि... **सुगन्ध और दुर्गन्ध...** वह गन्धगुण की पर्याय है। पुद्गल का गन्धगुण। जैसे पुद्गल का वर्णगुण, उसकी पाँच पर्यायें हैं। वैसे भगवान आत्मा का आनन्दगुण, ज्ञानगुण त्रिकाली, उसकी अनुभूति वह उसकी पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह सुरभि और दुरभि पर्याय है। किसकी? गन्ध की। गन्धगुण है, उसे सुगन्ध और दुर्गन्ध पर्याय है। गन्धगुण है, वह पुद्गल का गुण है और उसकी पर्याय है, वह सुगन्ध... इसमें तीनों आ गये। पुद्गलद्रव्य, उसका गुण गन्ध और उसकी पर्याय सुरभि और दुरभि। **सुगन्ध और दुर्गन्ध...** आहाहा! **वह सर्व ही जीव की नहीं है...** आहाहा! **क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से...** आहाहा! ये तो पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से। आहाहा! पुद्गल, उसका गन्धगुण, उसकी सुगन्ध-दुर्गन्ध ये पर्यायें, ये पुद्गलपरिणाममय हैं। आहाहा! उससे भिन्न नहीं, परिणाममय है। आहाहा! **अनुभूति से भिन्न है।** यह द्रव्यवस्तु, इसका आनन्द-ज्ञान आदि गुण, उसकी वर्तमान श्रद्धा

और अनुभव आदि उसकी पर्याय। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों समाहित कर दिये। आहाहा! गजब बात है, बापू! आहाहा!

भगवान आत्मा द्रव्य; उसका ज्ञान-आनन्द आदि गुण; उसकी अनुभूति-ज्ञान की पर्याय, आनन्द की पर्याय, श्रद्धा की पर्याय, शान्ति की पर्याय, चारित्र की पर्याय, यह सब अनुभूति की पर्याय है। आहाहा! ये पुद्गलद्रव्य, गुण और पर्याय से भगवान द्रव्य, गुण और अनुभूति की पर्याय से वे भिन्न हैं। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

फिर रस, रस। रस है, वह पुद्गलद्रव्य का गुण है। पुद्गलवस्तु है, उसका रस वह गुण है, उसकी पाँच पर्यायें हैं **कडुवा,...** यह कडुवा गुण नहीं है, यह रस की पर्याय है। आहाहा! **कषायला...** तोरा, तोरा कहते हैं न, वह रसगुण की पर्याय है। पुद्गलद्रव्य है, उसका रसगुण है, उसकी यह कषायला पर्याय है। **चरपरा,...** चरपरा गुण नहीं, रसगुण है, उसकी यह चरपरा पर्याय है। आहाहा! **खट्टा,...** खट्टा, यह रसगुण की एक पर्याय है **और मीठा...** यह गुड़ मीठा, शक्कर मीठी, मैसूर मीठा, आम मीठा, यह सब पर्याय रसगुण की पर्याय है। आहाहा! **वह सर्व ही जीव का नहीं है...** आहाहा! **क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से...** ये तो पुद्गलद्रव्य के परिणाम हैं। पुद्गलद्रव्य है, उसका रसगुण है और उसकी ये पर्यायें हैं अर्थात् **पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से...** उसके साथ अभेद है। आहाहा! समझ में आया?

यह समयसार! मीठालालजी! बापू! समयसार अर्थात् क्या? आहाहा! साक्षात् तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि का यह सार है। आहाहा! इसे समझने के लिये बहुत निवृत्ति चाहिए, भाई! आहाहा! क्योंकि यह प्रभु (आत्मा) राग से तो निवृत्तस्वरूप है। आहाहा! उसे कहते हैं कि रस की जो पाँच पर्यायें हैं - मीठी, खट्टी, मीठी लगती है न? वह तो जड़ की पर्याय है, यह जीव उसे स्पर्श नहीं करता, मात्र जानने में आता है, वहाँ उसे लगता है कि यह मीठा है, वह तो ज्ञान होता है और यह ठीक है, वहाँ तो राग होता है। वह राग भी जीव की पर्याय नहीं है। आहाहा! मीठा, जो मीठा ख्याल में आया—शक्कर, गुड़... आहाहा! ज्ञान में ख्याल में आया कि मीठा, वह मीठा स्वयं ज्ञान में नहीं आता, मिठास को यह ज्ञान की पर्याय स्पर्श भी नहीं करती; मात्र मिठास को जानते हुए ज्ञान

जानता है कि यह मिठास है। उसे फिर राग होता है कि यह बहुत अच्छा है, यह राग है। यह राग और मीठी पर्याय, इससे भगवान पूर्णतः भिन्न है। आहाहा! है? वे **(अपनी) अनुभूति से भिन्न है।** आत्मा और उसका आनन्दरस, यह सामान्य, आत्मा और आनन्दरस सामान्य, उसकी अनुभूति की विशेष रसपर्याय, उससे ये पर्यायें भिन्न हैं। आहाहा! ऐसा भेदज्ञान कराया है। आहाहा! तेरा स्वरूप प्रभु! द्रव्य से भिन्न है परन्तु द्रव्य से भिन्न है - ऐसा जाना किसने? आहाहा! जाननेवाले की पर्याय / अनुभूति हुई उसने जाना कि यह भिन्न है। आहाहा!

विशेष कहा जायेगा। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)